सप्तम अध्याय : वायु

डॉ0 संगीता शुक्ला,

एसोसिएट प्रोफेसर,
प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व विभाग, नवयुग कन्या महाविद्यालय,
लखनऊ विश्वविद्यालय से सहयुक्त, लखनऊ

वायु मूलतः एक वैदिक देवता हैं किंतु उन्हें इन्द्र, अग्नि एवं वरुण के समान महत्व प्राप्त नहीं था। वायु की स्वतंत्र रूप से स्तुति ऋग्वेद के एक ही सूक्त में है।[1] कतिपय अन्य सूक्तों में इनकी स्तुति मात्र आंशिक रूप से की गयी है। कुछ सूक्तों में वायु की स्तुति इन्द्र के साथ संयुक्त रूप से की गयी है। इस सन्दर्भ में वायु का परिजन्य रूप में भी उल्लेख किया गया है।[2]

ऋग्वेद में वायु का आवाहन प्रायः सोमपान में भाग लेने के लिये किया गया है। सोमपान के प्रथम अधिकारी इन्द्र और वायु ही बताये गये हैं। इन्द्र और वायु में भी वायु का वर्णन पहले सोमपायी के रूप में है।[3] वायु का एक विशेषण है ''शुचिप'' जिसका अर्थ 'स्वच्छ सोम का पान करने वाला' है। यह विशेषण वायु के लिये अनेक बार प्रयुक्त किया गया है परन्तु इन्द्र के लिये इसका प्रयोग केवल एक ही बार मिलता है। ऐतरेय ब्राह्मण में तो सोमपान के लिये हुई दौड़ में वायु के ही प्रथम आने का तथा इन्द्र के द्वितीय आने का उल्लेख है, परन्तु ऋग्वेद के वर्णन के अनुसार ये दोनों प्रायः एक साथ सोमपान करते हैं।[4] व्याख्याकारों ने ''इन्द्रवायु'' के युग्म को इतना घनिष्ठ माना है कि यह दोनों समान मान लिये गये हैं। परिणामतः जिस प्रकार द्युलोक का प्रतिनिधित्व सूर्य के द्वारा किया जाता है और पृथ्वी का प्रतिनिधित्व अग्नि द्वारा किया जाता है, उसी प्रकार अन्तरिक्ष का प्रतिनिधित्व इन्द्र अथवा वायु में से कोई भी एक कर सकता है।[5] इस प्रकार इन्द्र तथा वायु समान रूप से अन्तरिक्ष का प्रतिनिधित्व करने की क्षमता रखते हैं और इस दृष्टिकोण से सम हैं।

वायु का एक नाम वात है। वायु के दोनों नामों अर्थात वायु और वात का प्रयोग भौतिक वायु और उसके दिव्य मानवीकरण के लिये हुआ है। 'वायु' शब्द प्रमुख रूप से वायु–देवता का और 'वात' शब्द भौतिक वायु का बोधक है।[6] कहीं–कहीं एक मन्त्र में दोनों नाम आ जाते हैं।[7] दोनों का अन्तर इस तथ्य से ज्ञात होता है कि केवल वायु ही इन्द्र के साथ संयुक्त हुए हैं। दोनों वायु देवताओं के लिये भिन्न–भिन्न प्रकार के विशेषणों का प्रयोग हुआ है। 'वात' नाम का प्रयोग पुनः–पुनः/वा वहना इस धातु के साथ हुआ है, जिससे 'वात' शब्द की निष्पत्ति हुई है। उनकी स्तुति में एक सूक्त में उनका वर्णन मिलता है कि वह सामने आई हर वस्तु को धूल में मिलाते हुए प्रचण्ड रव करने वाले हैं।[8]

वायु यश, संतान, घोड़े, वृषभ और स्वर्ण देते हैं।[9] वे शत्रुओं को नष्ट करते हैं और दुर्बल व्यक्ति उन्हें अपनी रक्षा के लिये बुलाते हैं।[10] वायु सभी चराचर के जीवन तथा आत्मा हैं।[11] यह अत्यन्त बलशाली, चिरयुवा और अग्नि के मित्र हैं।[12] यह मेघों को उत्पन्न करने वाले हैं और इन्हीं के द्वारा वर्षा होती है।[13] महाभारत की कथा के अनुसार यह बलशाली पाण्डव भीम के पिता हैं।[14] इस प्रकार 'वायु' बल का प्रतीकात्मक है। रामायण में भी अतुलित बलधाम 'हनुमान' का पवन अर्थात वायु के समान होना उल्लिखित है, जो इस प्रतीक की पुष्टि करता है।[15] पाण्डव भीम की

माता कुन्ती के आवाहन पर वे मृग पर आरुढ़ होकर आते हैं।[16] यह अर्जुन को शस्त्रों के प्रयोग की शिक्षा देने वाले हैं तथा सीता की पवित्रता को प्रमाणित करते हैं।[17] भागवत पुराण में उल्लेख है कि नारद ने वायु को मेरु पर्वत के मस्तक को तोड़ने के लिये प्रेरित किया, किन्तु गरूड़ के प्रतिरोध के कारण वायुदेव सफल न हो सके। आगे कथा इस प्रकार है कि एक बार गरूड़ की अनुपस्थिति में नारद के सुझाव देने पर वायु ने मेरू पर्वत के शीर्ष भाग को तोड़कर समुद्र में फेंक दिया जो लंका द्वीप बना।[18]

वायु का वाहन 'मृग' है। मृग वेग का प्रतीक है और यह वायु के अतीव वेगवान होने का संकेत है। बृहत्संहिता में वायु के स्वरूप का विवरण नहीं दिया गया है, किंतु विष्णुधर्मोत्तर पुराण में उनके स्वरूप का विस्तृत विवरण प्राप्त हो जाता है। तदनुसार वायु को रूपवान और द्विभुजी वर्णित किया गया है। उन्हें दोनों हाथों से अपने वस्त्रों को पकड़े हुए बताया है, जो पुनः उनके अत्यन्त वेगवान होने का संकेत देता है। वेग के कारण उनका मुख खुला हुआ और केश बिखरे हुए वर्णित हैं। उनका वर्ण आकाश की तरह नीला है। परम सुन्दरी शिवा को जो वामवृत्ति वाली है, वायु की पत्नी के रूप में निरूपित किया गया है। वायु के भौतिक अस्तित्व को गति के बिना जाना नहीं जा सकता है। इसी आधार पर गति की परिकल्पना वायु की पत्नी के रूप में की गयी प्रतीत होती है। पुराण में वायु के वस्त्र को आकाश तथा शिवा देवी को गति कहा गया है।[19] हरिवंष में वायुदेव के स्वरूप का वर्णन करते समय उनके लिये 'उत्तमभूत', 'अशरीरी' तथा 'शीघ्रग' आदि विशेषणों का प्रयोग किया गया है।[20] मार्कण्डेय पुराण के देवी माहात्म्य खण्ड के परिशिष्ट वाराहपुराण के कवच में वायु की देवी वायवी का वाहन मृग बताया गया है।[21]

मत्स्यपुराण के अनुसार वायु का वाहन धूम्रवर्णी मृग है उनके युवावस्था एवं शान्तरूप का वर्णन यहाँ मिलता है। उन्हें चित्राम्बर वस्त्र धारण किये हुए तथा कुंचित भौहों से युक्त बताया गया है। उनका एक हाथ वरदमुद्रा में तथा दूसरा पताका ध्वज धारण किये हुए प्रदर्शित है।[22] अग्निपुराण में भी इन्हें मृगारूढ़ तथा ध्वज धारण किये हुए उत्तर पश्चिम दिशा का दिक्पाल होना बताया गया है।[23] वायुदेव के हरित वर्ण का होने का उल्लेख स्कन्दपुराण में,[24] ध्वज आयुध का उल्लेख गरूड़पुराण, स्कन्दपुराण तथा मानसोल्लास में[25] एवं मृग वाहन का उल्लेख स्कन्दपुराण तथा मानसोल्लास में भी है।[26] इन सभी स्थानों पर प्रतिमा लक्षण द्विभुजी हैं, किन्तु अपराजितपृच्छा में इनका वर्णन चतुर्भुजी रूप में मिलता है। अपराजितपृच्छा में प्रथम दो स्थानों में वायुदेव का मृगारूढ़ तथा हस्त में ध्वज धारण किये हुए वर्णन किया गया है[27] किन्तु तीसरे सन्दर्भ स्थल पर उनके वर्ण तथा आयुधों का भी उल्लेख है। रूपमण्डन तथा रूपावतार में इनका वर्णन अपराजितपृच्छा की ही भाँति दिया हुआ है और इसी तृतीय संदर्भ का अनुकरण देवता मूर्ति प्रकरण में भी किया गया है। इस प्रकार अपराजितपृच्छा के तीसरे संदर्भ स्थल, रूपावतार, रूपमण्डन एवं देवतामूर्तिप्रकरण के अनुसार वायु का मूर्तरूप उत्तर–पश्चिम अर्थात् वायव्य दिशा के अधिपति के रूप में जिस प्रकार वर्णित हैं उसके अनुसार वे चतुर्भुजी हैं तथा उनका वर्ण हरित है। उनका एक हस्त वरद मुद्रा में है तथा अन्य तीन हाथों में क्रमशः ध्वज, पताका तथा कमण्डलु धारित हैं।[28]

मयमत में वायुदेवता को मृग पर आरूढ़ तथा हाथों में ध्वज लिये हुए कहा गया है।[29] स्कन्दपुराण में वायु को काले वस्त्र पहने हुए, हरित वर्ण का और वायव्य दिशा में स्थापित बताया गया है। उनके केश खुले हुए और अव्यवस्थित हैं। इस वर्णन के अनुसार उन्हें मृग पर बैठा हुआ तथा द्विभुज निर्मित किया जाना चाहिए।[30]

अशुमदभेदागम में वायुदेव के प्रतिमा लक्षण वर्णित मिलते हैं।[31] इसमें उपलब्ध वर्णन के अनुसार वे चतुर्भुज न होकर द्विभुज हैं तथा इनके दाहिने हाथ को ध्वजायुक्त तथा बायें हाथ में दण्ड धारण किये हुए कहा गया है। यहाँ पाये गये वर्णन के अनुसार वे मृग पर आरूढ़ होने के बजाय सिंहासन पर आसीन हैं और शीघ्रता से जाने को उत्सुक हैं। दिक्पति वायु का धुएं के समान वर्ण, ताम्र के समान तेज, वस्त्र श्वेत, अनेक प्रकार के आभूषणों से सुसज्जित तथा केश बिखरे हुए बताया गया है। श्री तत्वनिधि में ध्वज एवं दण्डधारी वायु को मृगारूढ़ बताया गया है।[32] सुप्रभेदागम में वह मृग पर आरुढ़ तथा ध्वजयुक्त कहे गये हैं किन्तु इस सन्दर्भ में उनके दाहिने हाथ में ध्वज के स्थान पर अंकुश का उल्लेख पाया जाता है। पूर्वकारणागम में भी उनके एक हाथ में अंकुश का उल्लेख है। वायु के हाथों में चक्र भी हो सकता है।[33] अभिलाशितो–चिन्तामणि के अनुसार उनका दाहिना हाथ वरद मुद्रा में तथा बायां पताका युक्त होना चाहिये। यहां भी उनका वाहन मृग है।[34] शिल्परत्न में भी वायु का ही वह रूप आदि प्रदर्शित है जैसा कि अभिलाशितो–चिन्तामणि में वर्णित पाया जाता है। इस वर्णन में भी वायु का वाहन मृग ही बताया गया है।[35] यह दोनों वर्णन मत्स्य पुराण से समानता रखते हैं।

मानव जीवन के लिये अनिवार्य वायु का मूर्ति विज्ञान के क्षेत्र में कोई विशेष स्थान नहीं है। कुषाणकाल में वायु की मूर्तियों का सर्वप्रथम चित्रण मिलता है। कनिष्क एवं हुविष्क के सिक्कों पर अंकित ईरानी देव वात (ओ–ए–डो) का स्वरूप विष्णुधर्मोत्तर पुराण में वर्णित वायुदेव से सादृश्य रखता है।[36] कनिष्क के समय जारी किये गये सिक्कों पर वायु का जो चित्र मिलता है, उसमें वायु का रूप उग्र है। उनके केश खड़े हैं तथा वे दौड़ते हुए दिखाये गये हैं। वायु का ऐसा चित्रण हरिवंश पुराण में वर्णित चित्रण से भी साम्य रखता है, जहाँ उनको 'उत्तमभूत' एवं 'शीघ्रग' आदि कहा गया है।[37] हुविष्क कालीन सिक्कों पर भी वायु का चित्रण दौड़ते हुए किया गया है।[38] वे कनिष्क के सिक्कों पर बायीं ओर दौड़ते हुए अव्यवस्थित केश युक्त चित्रित मिलते हैं, परन्तु इस चित्रण में वे अपने उड़ते हुए वस्त्रों के दोनों छोरों को हाथों से पकड़े हुए प्रदर्शित हैं।

यद्यपि कला में वायु के चित्रण की परम्परा कुषाणकाल से ही प्रारम्भ हो गयी थी, किन्तु वायु की मूर्ति इस काल में अधिक लोकप्रिय नहीं हो सकी। लगभग यही स्थिति गुप्तकाल में भी बनी रही जबकि तत्कालीन साहित्य में वायु का उल्लेख निरन्तर मिलता है। ईसा की लगभग आठवीं शती के मन्दिरों में विधिवत निर्धारित कोण पर वायु का अंकन प्रारम्भ हुआ। ब्राह्मण मंदिरों के साथ ही जैन मंदिरों में भी दिक्पालों का अंकन पाया जाने लगा। इन दिक्पालों की संख्या आठ और कहीं–कहीं दस भी अंकित है।

बरूआ सागर के जरायमठ मंदिर के उत्तर–पश्चिम कर्ण पर बायें हाथ में गदा लिये वायु की स्थानक प्रतिमा अंकित है। यहाँ वे अपने वाहन मृग के साथ हैं।[39] मन्दिर के गर्भगृह के उत्तरंग के ऊपर स्थित शीर्ष–पट्टी पर चित्रित अष्टदिक्पाल समूह में भी वायु प्रदर्शित हैं। यहाँ बायीं ओर से तीसरी आकृति वायु देव की है। उनके दायें पार्श्व में मकरारूढ़ वरुण स्थित हैं। द्विभुज देव अपने दोनों हाथों से सिर के ऊपर से घूमे हुए वस्त्र को इस प्रकार पकड़े हैं कि वह प्रभामण्डल की तरह प्रतीत हो रहा है।[40] यहाँ उनका वाहन विशिष्ट है। यह शास्त्रीय विवरण के अनुरूप कला में प्रायः प्रदर्शित मृग नहीं है और न ही अश्व है। यह पशु शूकर प्रतीत हो रहा है। वायु का ऐसा वाहन दुर्लभ है। (चित्र सं0 1) दोनों हाथों से इसी प्रकार वायु पूरित वस्त्र को पकड़कर बैठे हुए वायु देव का अंकन बर्लिन संग्रहालय में संग्रहीत एक फलक पर भी प्राप्त होता है।[41] यहाँ भी वायु देवता अष्टलोकपाल

समूह में प्रदर्शित हैं। इस फलक की तिथि नवीं शती ई0 का प्रारम्भिक चरण है।

नवीं शताब्दी में निर्मित आबानेरी (राजस्थान) की कल्याणसुन्दर मूर्ति में वायु को द्विभुजी एवं सुन्दर युवा रूप में दिखाया गया है। इस मूर्ति में वे श्मश्रु विहीन हैं। मूर्ति को दोनों हाथों से अपने सिर के पीछे उड़ते हुए वस्त्रों के किनारों को पकड़े हुए प्रदर्शित किया गया है। हुविष्क के सिक्कों पर अंकित वायु के चित्रण के समान इस मूर्ति का बायां पैर पादपीठ पर दृढ़ता से रखा हुआ है और दाहिना पैर थोड़ा सा मुद्रा है। यह विवरण विष्णुधर्मोत्तरपुराण में वर्णित विवरण से साम्य रखता है किन्तु विष्णुधर्मोत्तर पुराण के अनुसार न तो उनके केश अव्यवस्थित हैं और न वस्त्र। इसके विपरीत मूर्ति के केश करीने से व्यवस्थित हैं। विष्णुधर्मोत्तर पुराण में उनके वाहन का उल्लेख नहीं हैं, किन्तु यहाँ वायु के दाहिने पैर के पीछे मृग प्रदर्शित है।[42] इस पृष्ठांकित मृग के सींग मुड़े हुए है तथा वह शीघ्रता से दायीं ओर कूदने या दौड़ने को उद्यत मुद्रा में है। इस मूर्ति में देवता के प्रमुख लक्षण उनका उड़ते हुए वस्त्रों को पकड़ना तथा वाहन मृग है। कन्नौज से मिली प्रतिहारकालीन कल्याण सुन्दर मूर्ति (आठवीं शती ई0) में शिव तथा उमा के विवाह का दृश्य है, जिसमें कई देवगण इस समारोह को देखते प्रदर्शित हैं। इस दैवी समारोह के साक्षी देवताओं में सुदर्शन तथा तरूण रूप में वायु देव भी प्रदर्शित हैं।[43] यहाँ वे बिल्कुल उसी प्रकार से अपने सिर के पीछे उड़ते हुए वस्त्र के छोरों को पकड़े हुए प्रदर्शित हैं, जिस प्रकार वे हुविष्क कालीन सिक्कों पर अंकित हैं, किन्तु यहाँ देवता को पादपीठ पर स्थित होने के बजाय तीव्रता से बायीं तरफ दौड़ते हुए एक अश्व के ऊपर बैठे हुए प्रदर्शित किया गया है (चित्र सं0 2)। यहाँ वाहन के रूप में अश्व का अंकन प्रतिमा सम्बन्धित शास्त्रों के वर्णन से पृथक है। प्रस्तुत मूर्ति वैदिक परम्परा से प्रभावित लगती है, जहाँ वायु को रथ पर आसीन बताया गया है, जो शीघ्रगामी अश्वों द्वारा खींचा जाता है।[44] महाभारत में अश्वों को मन एवं वायु के समान तेज दौड़ने वाला कहा गया है।[45] अन्यत्र साहित्य में इस प्रकार के उपमात्मक प्रयोग उपलब्ध हैं, जिसमें अत्यन्त वेग के गुण के आधार पर वायु को जीवधारियों में सबसे तेज और दौड़ते हुए घोड़े की तरह कहा गया है।[46] ऋग्वेद में वायु को मनोजुवा कहा गया है वायु की तीव्र गति को कला में कभी–कभी दौड़ते हुए अश्व के माध्यम से प्रदर्शित किया गया है। अश्व के साथ वायु का अंकन कन्नौज से ही प्राप्त प्रतिहार कालीन दो अन्य मूर्तियों में भी मिलता है। बलुए पत्थर से निर्मित यह प्रतिमाएं कनौज के कुतलूपर (वर्तमान मकरन्द नगर क्षेत्र) में स्थित 'राम लक्ष्मण मन्दिर' में विद्यमान हैं।[47] यह विष्णु की विश्वरूप मूर्तियाँ हैं। राम संज्ञक विश्वरूप की प्रतिमा के परिकर में प्रथम पंक्ति में दाहिनी ओर खड्ग धारण किये अश्वारूढ़ वायु का अंकन है। दूसरी विश्वरूप प्रतिमा (स्थानीय नाम लक्ष्मण) के भी परिकर में स्थित अनेक देवताओं की मूर्तियों के साथ वायु की मूर्ति भी अंकित मिलती है। इस परिकर में देवताओं की तीसरी पंक्ति में बिल्कुल बायीं ओर कोने में परशुराम के ऊपर वायु देव अंकित हैं, जो कन्नौज की कल्याण सुन्दर मूर्ति के समान सिर के पीछे उड़ते हुए वस्त्रों को दोनों हाथों से पकड़े हुए अश्व पर आसीन प्रदर्शित हैं (चित्र सं0 3)। पहले उदाहरण से यहाँ यह अन्तर है कि अति शीघ्रता से दौड़ने को उद्यत का भाव प्रदर्शित करने के लिये अश्व के मुख को ताकत लगाकर ऊपर उठाये हुए अंकित किया गया है।

साक्ष्यों से पता चलता है कि गुजरात में वायु का अंकन अपेक्षाकृत अधिक लोकप्रिय था।[72] गुजरात में वायु के कई मन्दिर मिले हैं, जो यह इंगित करता हैं कि किसी समुदाय विशेष में वहाँ वायु की पूजा की जाती थी। यहाँ यह तथ्य अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि गुजरात के अतिरिक्त भारत में वायु का कोई मन्दिर प्राप्त नहीं हुआ है।[48] गुजरात अरब सागर के तट पर स्थित है।

डा0 मजुमदार के आकलन के अनुसार प्राचीनकाल में गुजरात के कुछ व्यापारियों का अरब सागर के उत्तर–पश्चिमी किनारे पर स्थित कतिपय देशों के साथ व्यापारिक सम्बन्ध रहा होगा। वायु के उत्तर–पश्चिम दिशा का स्वामी होने के कारण, इस प्रकार की वायु पूजा से यात्रा के समय 'वायु' का अनुकूल होना और उनकी सहयोगिता से अपेक्षाकृत अधिक गति से जहाज चलाने की इच्छा रही होगी।[49] यही इस राज्य में वायु की पूजा की परम्परा के प्रचलित होने का कारण रहा होगा जबकि देश के अन्य भागों में उत्तर पश्चिम दिशा के दिक्पाल वायु की पूजा इस स्तर पर लोकप्रिय नहीं थी।

इस प्रकार वायु की उत्तर भारतीय प्रतिमाओं के अध्ययन से पता चलता है कि वायुदेवता की द्विभुजी एवं चतुर्भुजी दोनों प्रकार की प्रतिमायें निर्मित की जाती रहीं। द्विभुजी मूर्तियों में वह या तो सिर के ऊपर उड़ते हुए या पीछे उड़ते हुए वस्त्र के किनारों को दोनों हाथों से पकड़े हुए बनाये गये या हाथों में ध्वज पकड़े दिखाये गये। वायुदेव दोनों हाथों में चक्र धारण किये भी बनाये जा सकते हैं।[50] चतुर्भुजी प्रतिमाओं में वह अक्षमाला, ध्वज, पताका और कमण्डलु धारण किये प्रदर्शित किये गये। उनके साथ प्रायः मृग वाहन है, जो मूर्ति विज्ञान संबंधी शास्त्रों के अनुरूप है। कभी–कभी इन्हें दौड़ते हुए अश्व पर आरुढ़ भी दिखाया गया है, जिसका उदाहरण कन्नौज आदि कुछ स्थलों से प्राप्त अंकनों में मिलता है। वस्तुतः वायु को तीव्र दौड़ने वाला ऐसा वाहन प्रदान करने का विचार जान पड़ता है। जिसकी त्वरित गति की तुलना वायु से की जा सके और वायु के विशेषण 'मनोजुवा' को अभिव्यक्त किया जा सके।

उत्तर भारत के समान दक्षिण भारत में भी वायु की मूर्तियों का निर्माण बहुत सीमित रहा तथापि एलोरा की गुफा सं0 29 में वायु का सुंदर अंकन प्राप्त होता है। वायुदेव कल्याणसुन्दर स्वरूप में अंकित शिव के परिकर में प्रदर्शित हैं।[51] यहाँ वायु युवा रूप में, द्विभुजी एवं मृगारूढ़ हैं। दायें हाथ में ध्वज पकड़े और बायें हाथ को मृग की पीठ पर रखे हैं। राष्ट्रकूट कालीन इस कृति के प्रतिमालक्षण अग्निपुराण के वर्णन से समानता रखते हैं।[52] एलोरा में अष्टदिक्पालों का स्वतंत्र अंकन नहीं मिलता है। यह प्रायः शिव के विविध अंकनों में उनके परिकर में प्रदर्शित किये गये। गुफा सं0 29 के अतिरिक्त गुफा सं0 14 में नटराज मूर्ति तक गुफा सं0 16 में शिव की महायोगी तथा रावणानुग्रह मूर्तियों के परिकर में अष्टदिक्पालों की वाहन सहित आकृतियाँ उत्कीर्ण हैं। इस प्रकार दक्षिण भारतीय मूर्तिकला में वायु का चित्रण उत्तर भारतीय चित्रण से पृथक नहीं दिखायी देता है।

संदर्भ

1. सूर्यकान्त, वैदिक देवशास्त्र, दिल्ली, 1961, पृ0 204; Banerjee, J.N., Development of Hindu Iconography, Pg. 519
2. Macdonell, A.A., Vedic Mythology., Encyclopedia of Indo-Aryan Research, Vol.3, Part-1, A, Strassburg,1897, Pg.81-82
3. ऋग्वेद 4.46.1
4. ऐतरेय ब्राह्मण 2.25
5. निरूक्त 7.5
6. Journal of the American Oriental society, 11, Pg. 162 ; वैदिक देवशास्त्र, पृ0 207
7. ऋग्वेद 6.50.12; 10.92.13
8. ऋग्वेद 10.168.1
9. वही, 10.186.1
10. ऋग्वेद 7.90.2; 7.90.6

11. वही, 1.134.5
12. महाभारत आदि पर्व. 223.78
13. महाभारत आदि पर्व. 228.40
14. Hopkins, E. Washburn, Epic Myphology , Stassburg, France, 1915, Pg.13; Sahai, Bhagwant , Iconography of Mirron Hindu and Buddhist Deities, Delhi, 1975, Pg.53; Banerjee, Jitendra Nath, Develoment of Hindu Iconography, IInd Reviesd Edition, Calcutta, 1956, Pg.527
15. Epic Mathology, op.cit., Pg.13
16. महाभारत आदि पर्व. 123.12
17. Gupta, Shakti M., From Daityas to Devatas in Hindu Mythology, Delhi, 1973, Pg. 95
18. वही, पृ0 95
19. विष्णु धर्मोत्तर पुराण, 58.1–3
20. महाभारत, हरिवंश, हरिवंशपर्व. 34.29 पृ0 244 (गीता प्रेस, गोरखपुर द्वारा सम्पादित)
21. Gupte, R.S, op. cit., Pg.54
22. मत्स्य पुराण 260, 18 (2)–19
23. अग्नि पुराण 52,55 (1)
24. स्कंन्द पुराण 2.9.27.77
25. गरूड पुराण 1.34.44–45; स्कन्द पुराण, पु0 2.9.27.77; मानसोल्लास 2.3.1. 788–790
26. स्कंन्द पुराण, 2.9.27.77;मानसोल्लास 2.3. 1.788–790
27. अपराजित पृच्छा 60.24;149.7
28. अपराजित पृच्छा, 213,14; रूपमण्डन 2,36; देवता मूर्ति प्रकरण (सूत्रधार मण्डन), 4,64; रूपावतार अध्याय 14
29. मयमत 36.153
30. स्कन्द पुराण 2,9,27,77; Gupte, R.S, op. cit.,, Pg.54
31. Gupte, R.S, op. cit., , Pg.54
32. वही; श्रीतत्वनिधि, पृ0 105
33. Gupte, R.S., Iconography of the Hindus, Buddhists and Jains, Pg. 57-105
34. Rao, T.A. Gopinath, op.cit., II, II, Appendix B, Pg. 261-262; Gupte, R.S. op.cit.,, Pg. 54
35. वही
36. Banerjee, J.N., op.cit., Pg.527
37. जोशी नीलकंठ पुरुषोत्तम, प्राचीन भारतीय मूर्ति विज्ञान, पृ0 178; महाभारत, हरिवंश, हरिवंशपर्व. 34.29, पृ0 244 (गीता प्रेस, गोरखपुर)
38. Rao, T.A. Gopinath, op.cit., II, II, Pg. 532
39. Trivedi, S.D., Jarai Temple at Barwa Sagar, Jhasi, 1985, Pg. 34
40. Trivedi, S.D., Op. Cit., Pg. 29-30
41. Bhattacharya, Gauriswar, A Solitary Illustration of Eight Lokpalas from South Bihar, Journal of the Society for South Asian Studies, London, Vol. 3, 1987, Pg. 63-64
42. Munshi, K.M., Saga of Indian Sculpture, Bombay 1957, Pl. 57 n; Gupte, R.S. op.cit., Pg. 55
43. Gupte, R.S. op.cit., Pg. 55
44. ऋग्वेद 4.46.3
45. Gupte, R.S. op.cit., Pg. 56 ; Krishna, Brajesh, The Art under the Gurjara Pratiharas, New Delhi, 1989, Pg. 178
46. Hopkins, E. Washburn., op.cit., Pg. 96

47. जोशी, नीलकंठ पुरुषोत्तम, संग्रहालय पुरातत्व पत्रिका, लखनऊ, सं0 45–46 (प्रो0 के0 डी0 बाजपेयी स्मृति अंक), जून–दिसम्बर, 1990, पृ0 9–12, चित्र 1–7

48. जोशी, नीलकंठ पुरुषोत्तम, प्राचीन भारतीय मूर्ति विज्ञान, पृ0 178. ; Majumdar, M.R., Iconography of Vayu and Vayu-worship in Gujarat, Journal of the Indian Society of Orinetal Art, Calcutta,, Vol XI, 1943, Pg. 108-114

49. Majumdar, M.R., Op.cit., Pg. 108-114.

50. Gupte, R.S., Iconography of the Hindus, Buddhists and Jains, 1972, Pg. 57, 105

51. Ganguly, O.C., The art of Rastrakutas, Pl. 21

52. अग्नि पुराण, पृ0 52.14